नईदुनिया

संपादकीय

उच्च सदन की मूल भावना को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता

लोकतंत्र के उच्च सदन राज्यसभा का गठन संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता का प्रतीक है। इसकी परिकल्पना इस उद्देश्य से की गई थी कि प्रत्यक्ष चुनावी राजनीति से अलग समाज के विविध बौद्धिक वर्ग नीति निर्माण में भागीदार बनें। प्रोफेसर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, किसान, अधिवक्ता, व्यापारी और सामाजिक कार्यकर्ता जैसे विशेषज्ञ अपने अनुभव और ज्ञान से विधायी प्रक्रिया को समृद्ध करें। यही भावना इस सदन को विशिष्ट बनाती है और यही इसकी वास्तविक पहचान है। राज्यसभा के सभी सम्मानित सदस्य इस गरिमा के संरक्षक हैं तथा सदन की मर्यादा सर्वोपरि है।

चयन प्रक्रिया पर चर्चा का उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष की आलोचना नहीं, बल्कि उस मूल भावना को सुदृढ़ करना है जिसके लिए इस सदन की स्थापना हुई थी। हाल की रिपोर्टों के अनुसार वर्तमान राज्यसभा में लगभग 90 प्रतिशत सदस्य करोड़पति हैं, 14 प्रतिशत सदस्य अरबपति हैं और 226 में से 69 सदस्यों पर आपराधिक प्रकरण दर्ज हैं। इनमें 36 मामले गंभीर प्रकृति के हैं। 226 सदस्यों की कुल घोषित संपत्ति 26 हजार करोड़ रुपये से अधिक आंकी गई है, जबकि केवल चार सदस्यों की संपत्ति 20 लाख रुपये से कम है। ये आंकड़े विमर्श का आधार प्रस्तुत करते हैं।

राज्यसभा में अप्रत्यक्ष चुनाव और राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्यों का प्रावधान इसलिए रखा गया था कि समाज के वे मनीषी भी विधायी प्रक्रिया का हिस्सा बन सकें, जो सक्रिय चुनावी राजनीति में नहीं हैं। शिक्षा, अनुसंधान, चिकित्सा, कृषि, कानून और समाजसेवा जैसे क्षेत्रों के विशेषज्ञ अपनी व्यावहारिक समझ से नीति निर्माण को बेहतर बना सकते हैं। यही विविधता उच्च सदन की सबसे बड़ी शक्ति है। बीते वर्षों में चयन प्रक्रिया में कुछ ऐसे रुझान भी दिखाई दिए हैं, जो इस मूल भावना से कुछ हद तक विचलित प्रतीत होते हैं। चुनाव में पराजय के बाद सदस्यता, राजनीतिक वफादारी के आधार पर मनोनयन तथा धनबल के प्रभाव जैसी चर्चाएं सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनी हैं। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या उस विशेषज्ञ वर्ग को पर्याप्त अवसर मिल रहा है, जिसके लिए यह सदन परिकल्पित था। राज्यसभा की समितियां विधेयकों की गहन समीक्षा करती हैं, इसलिए यहां विषय विशेषज्ञता का होना विधायी गुणवत्ता के लिए अत्यंत आवश्यक है। अपराधीकरण और अत्यधिक आर्थिक असमानता पर भी विचार आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि संपन्न व्यक्ति जनसेवा नहीं कर सकता, लेकिन विविध सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व सदन को अधिक संतुलित बनाता है। सुधार के लिए राजनीतिक दलों को उम्मीदवारों की विषय विशेषज्ञता को प्राथमिकता देनी चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सीटों पर अपने क्षेत्र में असाधारण योगदान देने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अवसर मिलना चाहिए। उम्मीदवारों के कार्य और योगदान का सार्वजनिक विवरण उपलब्ध कराया जाए तथा चयन प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाया जाए। साथ ही राज्यसभा की समिति प्रणाली को और सशक्त किया जाए। सदस्यों को शोध सहायता उपलब्ध कराई जाए तथा नवनिर्वाचित सदस्यों के लिए विधायी प्रक्रिया और नीति विश्लेषण का प्रशिक्षण अनिवार्य बनाया जाए। इससे सदन की कार्यक्षमता और जनविश्वास दोनों मजबूत होंगे। राज्यसभा लोकतंत्र की परिपक्वता का प्रतीक है। यह केवल कानून पारित करने का मंच नहीं, बल्कि दूरदर्शी और संतुलित नीति निर्माण का सदन है। इसलिए आवश्यक है कि चयन प्रक्रिया में योग्यता, अनुभव और सार्वजनिक सेवा को सर्वोच्च प्राथमिकता मिले। तभी राज्यसभा अपनी मूल भावना के अनुरूप देश को प्रभावी और दूरदर्शी मार्गदर्शन दे सकेगी।

आजकल

यूएस छात्र वीजा नियम में बदलाव

'ड्यूरेशन ऑफ स्टेटस' खत्म, भारतीय छात्रों पर पड़ेगा अतिरिक्त बोझ

अमेरिका में अंतरराष्ट्रीय छात्रों के वीजा नियमों में प्रस्तावित बदलाव सुरक्षा और प्रशासनिक नियंत्रण के उद्देश्य से प्रेरित प्रतीत होता है। वर्तमान 'ड्यूरेशन ऑफ स्टेटस' व्यवस्था में छात्र तब तक वैध माने जाते हैं, जब तक वे शैक्षणिक कार्यक्रम में नामांकित रहते हैं और वीजा की शर्तों का पालन करते हैं। इसकी कोई निश्चित समाप्ति तिथि नहीं होती। प्रस्ताव के अनुसार अब एफ-1 छात्र वीजा, जे-1 एक्सचेंज वीजा और अन्य श्रेणियों के लिए अधिकतम चार वर्ष की समय-सीमा तय होगी। इसके बाद पढ़ाई जारी रखने के लिए औपचारिक मंजूरी लेनी होगी। तथ्यों के आधार पर यह बदलाव उन छात्रों को सीधे प्रभावित करेगा, जिनके पाठ्यक्रम चार वर्ष से अधिक अवधि के हैं। वर्ष 2023-24 में अमेरिका के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.31 लाख से अधिक भारतीय छात्र अध्ययनरत थे। इनमें बड़ी संख्या पीएचडी, मेडिकल, इंजीनियरिंग और शोध आधारित कार्यक्रमों की है, जहां डिग्री पूरी करने में पांच से सात वर्ष लगना सामान्य बात है। प्रस्ताव लागू होने पर ऐसे छात्रों को चार वर्ष पूरे होने के बाद वीजा विस्तार के लिए आवेदन करना होगा और अतिरिक्त दस्तावेज, प्रशासनिक जांच तथा मंजूरी की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा।

इस प्रस्ताव के दो पक्ष हैं। पहला, सुरक्षा और निगरानी का, जिसके अनुसार निश्चित समय-सीमा से वीजाधारकों की निगरानी आसान होगी और वीजा के दुरुपयोग की संभावना घटेगी। दूसरा पक्ष शैक्षणिक निरंतरता का है। शोध आधारित कार्यक्रमों में यह व्यवस्था कृत्रिम बाधा बन सकती है। प्रशासनिक देरी या दस्तावेज संबंधी त्रुटियों से छात्रों पर अनिश्चितता और कानूनी जोखिम बढ़ सकता है। सुरक्षा की आवश्यकता उचित है, लेकिन शोध और उच्च शिक्षा की प्रकृति को देखते हुए पीएचडी, मेडिकल तथा अन्य दीर्घकालिक पाठ्यक्रमों के लिए अपवाद या स्वचालित विस्तार की व्यवस्था आवश्यक है। अन्यथा भारत जैसे देशों के प्रतिभाशाली छात्र दूसरे विकल्प तलाश सकते हैं, जिससे अमेरिका की उच्च शिक्षा और अनुसंधान व्यवस्था को दीर्घकालिक नुकसान हो सकता है।

किशोरियों में गर्भधारण दर 37 से बढ़कर 47 प्रतिशत

शिक्षा का अभाव, जर्जर परम्पराओं ने भविष्य को अंधकार में धकेला

किशोरियों में गर्भधारण दर 37 से बढ़कर 47 प्रतिशत होना केवल एक आंकड़ा नहीं, बल्कि समाज के लिए गंभीर चेतावनी है। शिक्षा का अभाव और जर्जर हो चुकी परम्पराएं देश के भविष्य को अंधकार की ओर धकेल रही हैं। देश के भविष्य की नींव कही जाने वाली किशोरियों की कोख जब समय से पहले मातृत्व का बोझ उठाने लगे, तो समझ जाना चाहिए कि समाज की शिक्षा व्यवस्था और सांस्कृतिक सोच दोनों में गहरी दरार आ चुकी है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के ताजा आंकड़े यही बताते हैं कि 15 से 19 वर्ष आयु वर्ग की किशोरियों में गर्भधारण की दर 37 प्रतिशत से बढ़कर 47 प्रतिशत हो गई है। यह केवल आंकड़ा नहीं है, बल्कि हजारों बेटियों का स्कूल छूटना, हजारों सपनों का दम तोड़ना और देश की जनशक्ति का समय से पहले जिम्मेदारियों के बोझ तले दब जाना है। जब एक किशोरी कलम पकड़ने की उम्र में पालना संभालने लगे, तो विकास की गति अपने आप धीमी पड़ जाती है।

इस बढ़ोतरी के पीछे सबसे बड़ा कारण शिक्षा का अभाव है। गांव, देहात और आदिवासी क्षेत्रों में आज भी बड़ी संख्या में लड़कियां आठवीं या दसवीं के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। इसके पीछे गरीबी, सामाजिक दबाव, घरेलू जिम्मेदारियां और सबसे बड़ा कारण बाल विवाह की परम्परा है। जब 15-16 वर्ष की उम्र में विवाह हो जाएगा, तो गर्भधारण भी स्वाभाविक रूप से जल्दी होगा। यह सोच आज भी अनेक परिवारों में मौजूद है। शिक्षा के अभाव में किशोरियों को अपने शरीर, प्रजनन स्वास्थ्य और पोषण संबंधी आवश्यक जानकारी नहीं मिल पाती। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता कि कम उम्र में गर्भधारण से मां और बच्चे, दोनों के जीवन पर गंभीर खतरा मंडरा सकता है। रक्ताल्पता, प्रसव के समय जटिलताएं, नवजात शिशु का कम वजन और मृत्यु दर जैसी समस्याएं बढ़ जाती हैं, लेकिन अज्ञानता के कारण इन खतरों को अनदेखा कर दिया जाता है।

जर्जर हो चुकी सामाजिक परम्पराएं और मान्यताएं भी इस समस्या की बड़ी वजह हैं। आज भी बेटी को पराया धन मानकर उसकी शादी जल्दी करने की होड़ लगी रहती है। बिरादरी, पंचायत और रिश्तेदारों का दबाव माता-पिता को मजबूर कर देता है कि बेटी को 18 वर्ष से पहले ही विदा कर दें। लोग यह भूल जाते हैं कि 18 वर्ष से कम उम्र में विवाह कानूनन बाल विवाह है और दंडनीय अपराध भी। लेकिन कानून की किताब अक्सर घर की चौखट पार नहीं कर पाती। जब समाज स्वयं यह तय कर ले कि बेटी का भविष्य ससुराल है, स्कूल नहीं, तब शिक्षा की कोई भी योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकती। बाल विवाह केवल एक रस्म नहीं, बल्कि ऐसी जंजीर है जो किशोरी के पैरों में बंधकर उसे जीवनभर पीछे खींचती रहती है।

यौन शिक्षा और प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी जानकारी का अभाव भी गंभीर समस्या है। आज भी स्कूलों और कॉलेजों में किशोरियों को खुलकर यह नहीं बताया जाता कि माहवारी क्या है, गर्भ कैसे ठहरता है, गर्भनिरोधक साधन क्या हैं और असुरक्षित संबंधों से क्या खतरे हो सकते हैं। शर्म, संकोच और परम्परा के नाम पर इस विषय पर चुप्पी साध ली जाती है। परिणाम यह होता है कि किशोरियां अधूरी या गलत जानकारी के भरोसे रहती हैं, अफवाहों पर विश्वास करती हैं और अनचाहे गर्भधारण का शिकार बन जाती हैं। जब सही जानकारी नहीं होगी, तो सही निर्णय कैसे होगा, और जब निर्णय ही गलत होगा, तो जीवन सही दिशा कैसे पाएगा।

इस समस्या को केवल स्वास्थ्य विभाग का विषय मानकर छोड़ना उचित नहीं होगा। यह पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है। सबसे पहले व्यापक जनजागरण अभियान चलाने की आवश्यकता है। गांव-गांव, मोहल्लों, नुक्कड़ नाटकों, रैलियों और पंचायत बैठकों के माध्यम से लोगों को समझाना होगा कि बेटी पढ़ेगी तो देश आगे बढ़ेगा, लेकिन यदि वह 18 वर्ष से पहले मां बनेगी तो देश का भविष्य भी प्रभावित होगा। माता-पिता को यह समझाना होगा कि बेटी की शादी उसकी उम्र के अनुसार होनी चाहिए, न कि दहेज या बिरादरी के दबाव के कारण। आशा कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और शिक्षक इस अभियान के सबसे प्रभावी सिपाही बन सकते हैं, क्योंकि लोगों का विश्वास उन्हीं पर सबसे अधिक होता है।

साथ ही शिक्षा व्यवस्था में भी व्यापक सुधार आवश्यक है। आठवीं कक्षा से ही बालिकाओं को जीवन कौशल शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसमें प्रजनन स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य और लैंगिक समानता जैसे विषय शामिल हों। वैज्ञानिक और सहज भाषा में जानकारी दी जाए, ताकि किशोरियां अपने शरीर को समझ सकें और सही निर्णय ले सकें। स्कूलों में नियमित स्वास्थ्य जांच हो तथा यदि कोई किशोरी गर्भवती पाई जाए तो उसे कलंकित करने के बजाय उसकी पढ़ाई जारी रखने में सहायता दी जाए। ड्रॉपआउट रोकने के लिए छात्रवृत्ति, साइकिल और निःशुल्क सैनिटरी पैड जैसी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन भी आवश्यक है।

संस्कृति और परम्परा के नाम पर जो रूढ़ियां बेटियों को आगे बढ़ने से रोक रही हैं, उन्हें बदलने का समय आ गया है। परम्परा का सम्मान आवश्यक है, लेकिन जो परम्परा बेटी के जीवन और भविष्य पर भारी पड़े, उसे बदलना ही वास्तविक प्रगति है। बेटी को लक्ष्मी या देवी मानने का अर्थ केवल प्रतीकात्मक सम्मान नहीं, बल्कि उसके अधिकारों, शिक्षा और सपनों का सम्मान भी होना चाहिए। यदि हमारी परम्पराएं बेटियों को कम उम्र में मातृत्व के लिए मजबूर कर रही हैं, तो वे परम्पराएं नहीं, बल्कि बेड़ियां हैं, जिन्हें समय रहते तोड़ना आवश्यक है।

सरकार, प्रशासन, पुलिस और समाज सभी को मिलकर इस दिशा में कार्य करना होगा। बाल विवाह की सूचना देने वालों को प्रोत्साहन मिले और इसे कराने वालों पर कड़ी कार्रवाई हो। पंचायत प्रतिनिधि संकल्प लें कि उनके क्षेत्र में कोई बाल विवाह नहीं होगा। मीडिया और सोशल मीडिया इस अभियान को जन-जन तक पहुंचाएं। प्रसिद्ध खिलाड़ी और सेलिब्रिटी भी आगे आएं, क्योंकि युवा उनकी बात सुनते हैं।

किशोरियों में बढ़ती गर्भधारण दर केवल स्वास्थ्य का प्रश्न नहीं, बल्कि शिक्षा, लैंगिक समानता और देश के विकास का भी प्रश्न है। यदि आज समाज नहीं जागा, तो आने वाले वर्षों में स्थिति और अधिक गंभीर हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि जनजागरण का बिगुल बजे, शिक्षा की मशाल जले और रूढ़ियों की जंजीर टूटे। बेटी बचेगी, पढ़ेगी और उचित समय पर मां बनेगी, तभी देश का भविष्य वास्तव में उज्ज्वल होगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

जनजागरण अभियान से तोड़नी होगी रूढ़ियों की जंजीर

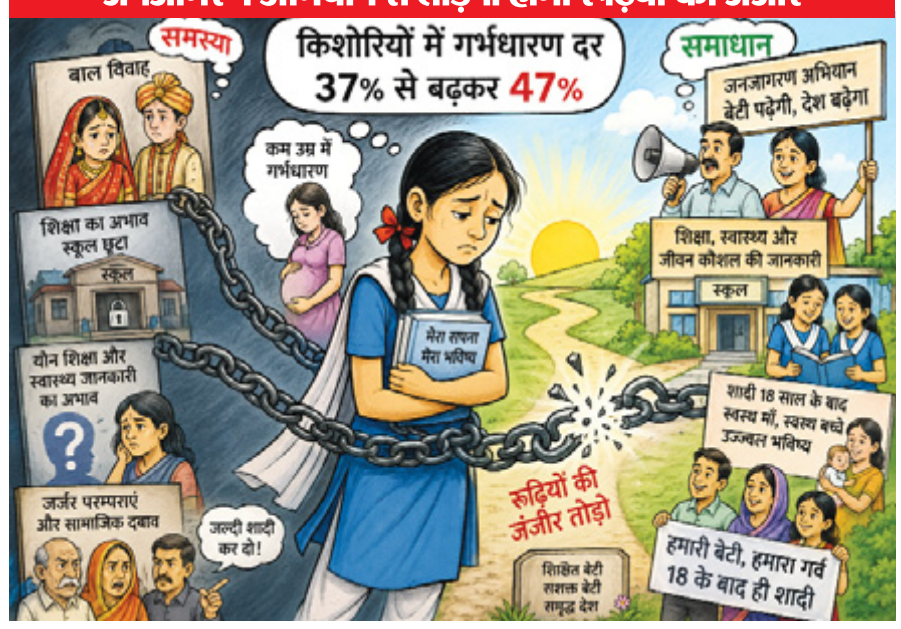

सुपर स्पेशलिटी का तमगा, बीमा अस्पताल की बदहाली पर सवाल

सरकार ने तीन साल पहले कर्मचारी राज्य बीमा (ईएसआई) अस्पताल को सुपर स्पेशलिटी का दर्जा देकर बड़ी घोषणा की थी। कागज पर शब्द बड़े थे। सुपर स्पेशलिटी का मतलब था कि अब बीमित श्रमिकों और उनके परिवारों को दिल, गुर्दा, न्यूरो और कैंसर जैसी जटिल बीमारियों का इलाज एक ही छत के नीचे मिलेगा। उन्हें एम्स, हमीदिया या निजी अस्पतालों के चक्कर नहीं काटने पड़ेंगे। चार लाख बीमित श्रमिकों ने राहत की सांस ली थी, पर हकीकत आज भी वही है। जिस अस्पताल को सुपर स्पेशलिटी का तमगा मिला, उसे देखकर लगता है कि तमगा पुरानी दीवार पर टांग दिया गया है और अंदर आज भी वही जर्जर मशीनें, वही डॉक्टरों की कमी और वही मरीजों की लंबी कतारें हैं।

सबसे बड़ा संकट विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी का है। सुपर स्पेशलिटी अस्पताल का मतलब है कार्डियोलॉजिस्ट, न्यूरोसर्जन, नेफ्रोलॉजिस्ट और ऑन्कोलॉजिस्ट जैसी विशेष शाखाओं के डॉक्टर। पर यहां कई पद खाली हैं। जो डॉक्टर हैं, उनमें से अधिकांश प्रतिनियुक्ति पर आए हैं और स्थायी रूप से काम करने को तैयार नहीं हैं। नतीजा यह है कि ओपीडी में मरीज घंटों बैठा रहता है और जब नंबर आता है तो डॉक्टर उपलब्ध नहीं मिलता। रेफर की पर्ची हाथ में थमा दी जाती है - एम्स जाओ, हमीदिया जाओ। एक श्रमिक, जो फैक्ट्री में आठ घंटे मशीन चलाकर थक चुका है, वह बीमारी के साथ अस्पतालों के चक्कर लगाने को मजबूर है। ईएसआई का पैसा हर महीने वेतन से कटता है, पर सुविधा के नाम पर केवल निराशा मिलती है।

दूसरी बड़ी विफलता जांच सुविधाओं की है। सुपर स्पेशलिटी अस्पताल में एक्स-रे, सीटी स्कैन, सोनोग्राफी और आधुनिक पैथोलॉजी लैब जैसी सुविधाएं होना आवश्यक है, पर यहां आज भी कई व्यवस्थाएं अधूरी हैं। पुरानी मशीनों के भरोसे काम चल रहा है। सोनोग्राफी मशीन पर्याप्त नहीं है और कई जरूरी पैथोलॉजी जांचें अस्पताल में उपलब्ध नहीं हैं। ब्लड शुगर, हीमोग्लोबिन जैसी सामान्य जांचों के लिए भी मरीजों को बाहर भेजा जाता है। बाहर का मतलब निजी लैब, जहां एक बार में हजारों रुपये खर्च हो जाते हैं। बीमित श्रमिक की आय सीमित होती है। वह हर महीने ईएसआई का अंशदान देता है और फिर इलाज के लिए अलग से पैसा खर्च करता है। यह दोहरा बोझ किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

तीन साल बीत जाने के बाद भी हालात नहीं बदले हैं। इसका एक कारण प्रशासनिक बदलाव भी है। अस्पताल पहले राज्य शासन के अधीन था, बाद में उसका संचालन कर्मचारी राज्य बीमा निगम को सौंप दिया गया। टेकओवर के बाद निगम और राज्य सरकार के बीच समन्वय का अभाव दिखाई दिया। फाइलें इधर-उधर घूमती रहीं, भर्तियां रुकी रहीं और डॉक्टरों की नियुक्तियां लंबित पड़ी रहीं। इसी खींचतान में सबसे अधिक नुकसान मरीजों को हुआ। श्रमिक संगठनों ने कई बार शिकायतें कीं, धरने दिए और अस्पताल का घेराव भी किया। उनका कहना है कि जब तक आधुनिक मशीनें नहीं लगेंगी और विशेषज्ञ डॉक्टर नहीं आएंगे, तब तक सुपर स्पेशलिटी का दर्जा केवल नाम भर रहेगा। यह बात पूरी तरह सही है। तमगा लगाने से इलाज नहीं होता, उसके लिए संसाधन और इच्छाशक्ति दोनों चाहिए। सुपर स्पेशलिटी का वादा केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं था, बल्कि चार लाख श्रमिकों के भरोसे का सवाल था। कारखानों में काम करने वाला मजदूर जानता है कि उसकी नौकरी जोखिम भरी है। मशीन से चोट लग सकती है, रसायनों से नुकसान हो सकता है और धूल-धुएं से गंभीर बीमारियां हो सकती हैं। इसी भरोसे पर वह ईएसआई में योगदान देता है कि जरूरत पड़ने पर अस्पताल उसका साथ देगा। लेकिन जब संकट का समय आता है तो उसे रेफर कर दिया जाता है। मरीज को स्ट्रेचर पर लिटाकर दूसरे अस्पताल भेजने की मजबूरी किसी भी स्वास्थ्य व्यवस्था की कमजोरी को उजागर करती है।

समस्या केवल डॉक्टरों और मशीनों तक सीमित नहीं है। उपचार सेवाएं भी सीमित हैं। सुपर स्पेशलिटी अस्पताल में हृदय रोग, डायलिसिस, न्यूरो सर्जरी और कैंसर उपचार जैसी सुविधाएं प्रभावी रूप से उपलब्ध होनी चाहिए, पर यहां बेड कम हैं, ऑपरेशन थियेटर पुराने हैं और आईसीयू में संसाधनों की कमी है। नर्सिंग स्टाफ पर अत्यधिक दबाव है। ऐसे में गुणवत्तापूर्ण इलाज की अपेक्षा करना कठिन हो जाता है। इसका सबसे ज्यादा असर महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों पर पड़ता है। गर्भवती महिला अल्ट्रासाउंड के लिए भटकती है, बच्चे को विशेषज्ञ चिकित्सक नहीं मिलता और बुजुर्ग मरीज को लंबा इंतजार करना पड़ता है।

अब जरूरत युद्ध स्तर पर सुधार की है। खाली पड़े डॉक्टरों के पद तुरंत भरे जाएं। निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों को संविदा पर जोड़ा जाए। मशीनों का आधुनिकीकरण हो और डिजिटल जांच सुविधाएं विकसित की जाएं। हर तिमाही यह समीक्षा हो कि कितनी मशीनें लगीं, कितने डॉक्टर नियुक्त हुए और कितने मरीजों को लाभ मिला। अस्पताल प्रबंधन में श्रमिक प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जाना चाहिए, ताकि जमीनी फीडबैक सीधे निर्णय लेने वालों तक पहुंचे। सुपर स्पेशलिटी का दर्जा देना आसान है, पर उसे सार्थक बनाना कठिन है। यह केवल फाइल का शब्द नहीं, बल्कि मरीज की उम्मीद है। सरकार और ईएसआई निगम को अस्पताल के वार्डों में जाकर वास्तविक स्थिति देखनी चाहिए। चार लाख बीमित श्रमिक प्रदेश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। उनके स्वास्थ्य की उपेक्षा प्रदेश के विकास की उपेक्षा है। अस्पताल को वास्तव में सुपर स्पेशलिटी बनाना है तो पहले इरादों को सुपर स्पेशल बनाना होगा। तभी मशीनें आएंगी, डॉक्टर टिकेंगे और मरीज के चेहरे पर भरोसा लौटेगा। अन्यथा तमगा दीवार पर टंगा रहेगा और इलाज अब भी पुरानी व्यवस्था के भरोसे चलता रहेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

मध्यप्रदेश में डीजल डिलीवरी का प्रयोग इंदौर से शुरू

मध्यप्रदेश में बीपीसीएल की सहायक कंपनी पीसीएल द्वारा जिप्प फ्यूल नाम से शुरू की गई डोरस्टेप डीजल डिलीवरी सेवा प्रदेश के ऊर्जा वितरण मॉडल में बड़ा बदलाव है। इस प्रयोग की शुरुआत इंदौर से हुई है और इसे पूरे मध्यप्रदेश में चरणबद्ध विस्तार का आधार माना जा रहा है। अब निर्माण स्थल, फैक्ट्री, जनरेटर, कृषि उपकरण और लॉजिस्टिक इकाइयों को डीजल के लिए पेट्रोल पंप तक नहीं जाना पड़ेगा। मोबाइल डिस्पेंसर वाहन निर्धारित मात्रा में ईंधन सीधे साइट पर पहुंचाएंगे। तार्किक रूप से यह कदम समय की बचत, उत्पादकता में वृद्धि और डिजिटल आपूर्ति श्रृंखला की मांग के अनुरूप है। पीईएसओ द्वारा अनुमोदित विस्फोटक सुरक्षा मानकों के तहत यह सेवा कानूनी दायरे में है, इसलिए नीतिगत आधार पर यह प्रयोग वैध और प्रगतिशील माना जा सकता है।

तथ्य यह है कि मध्यप्रदेश एक बड़ा कृषि और उद्योग प्रधान राज्य है। यहां भोपाल, जबलपुर, ग्वालियर, सागर और रीवा जैसे शहरों के साथ हजारों गांवों में डीजल आधारित मशीनें संचालित होती हैं। इन सभी क्षेत्रों में ईंधन लेने के लिए पंप तक आना-जाना लागत और समय दोनों बढ़ाता है। डोरस्टेप डिलीवरी से आपूर्ति श्रृंखला छोटी होगी और थोक उपभोक्ता सीधे कंपनी से जुड़ सकेंगे। डिजिटल मीटर और सीलबंद टैंकरों से मात्रा की सटीकता बढ़ेगी, जिससे मिलावट और चोरी की संभावनाएं कम होंगी। अंतरराष्ट्रीय उदाहरण बताते हैं कि मोबाइल फ्यूलिंग से लॉजिस्टिक लागत 10 से 15 प्रतिशत तक घट सकती है। यदि यह मॉडल प्रदेश भर में प्रभावी ढंग से लागू हुआ तो निर्माण और कृषि क्षेत्र की दक्षता में प्रत्यक्ष सुधार दिखाई देगा।

हालांकि इस पूरी व्यवस्था की सबसे बड़ी कसौटी सुरक्षा है। डीजल एक ज्वलनशील पदार्थ है और मध्यप्रदेश के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जनघनत्व और परिस्थितियां अलग-अलग हैं। तथ्यात्मक रूप से अधिकांश दुर्घटनाएं मानव भूल और उपकरणों की विफलता के कारण होती हैं।

इसलिए डिलीवरी वाहनों में लीक-प्रूफ टैंक, ऑटो-कट नोजल, स्पार्क-प्रूफ पंप, जीपीएस ट्रैकिंग और रिमोट शटडाउन जैसी व्यवस्थाएं अनिवार्य होनी चाहिए। चालक और परिचालक को हेजमैट तथा अग्निशमन संबंधी प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। पीईएसओ ने अनुमोदन दिया है, पर मध्यप्रदेश के सभी जिलों में स्थानीय प्रशासन को रूट मंजूरी, समय-सीमा और अधिकतम डिलीवरी मात्रा निर्धारित करनी होगी।

घनी आबादी वाले क्षेत्रों में दिन के व्यस्त समय में डिलीवरी पर प्रतिबंध लगाने और रिहायशी कॉलोनियों में प्रवेश के लिए सख्त मानक तय करने की आवश्यकता है। यदि नियमन शिथिल रहा तो सुविधा के नाम पर किसी भी क्षेत्र में गंभीर दुर्घटना की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता।

आर्थिक दृष्टि से यह प्रयोग प्रतिस्पर्धा बढ़ाने और पारदर्शिता लाने वाला कदम भी साबित हो सकता है। मध्यप्रदेश के थोक खरीदार सीधे कंपनी से जुड़ेंगे, जिससे खुदरा पंपों पर दबाव कम होगा। डिजिटल भुगतान और ई-रसीदों से मूल्य और मात्रा की पारदर्शिता बढ़ेगी। उपभोक्ता को यह स्पष्ट जानकारी मिलेगी कि वह किस दर पर और कितनी मात्रा में ईंधन प्राप्त कर रहा है। हालांकि यह भी आवश्यक है कि इस क्षेत्र में केवल एक कंपनी का वर्चस्व न बने। एचपीसीएल, आईओसीएल और अन्य तेल कंपनियों को भी समान सुरक्षा और गुणवत्ता मानकों के तहत ऐसी सेवाएं शुरू करने की अनुमति मिलनी चाहिए। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से उपभोक्ता को बेहतर सेवा और उचित मूल्य मिलेगा। डिलीवरी शुल्क को ईंधन मूल्य से अलग प्रदर्शित करना भी जरूरी है, ताकि उपभोक्ता विभिन्न विकल्पों की पारदर्शी तुलना कर सके।

डोरस्टेप डीजल डिलीवरी का यह प्रयोग इंदौर से शुरू होकर पूरे मध्यप्रदेश के लिए एक मॉडल बन सकता है। यह सुविधा बढ़ाता है, समय बचाता है और ईंधन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन इसकी सफलता पूरी तरह सुरक्षा मानकों के कठोर पालन पर निर्भर करेगी। यदि पीईएसओ और मध्यप्रदेश सरकार जिला स्तर पर प्रभावी निगरानी तंत्र विकसित करें, रूट और समय का वैज्ञानिक नियमन करें तथा शिकायत निवारण प्रणाली को मजबूत बनाएं, तो यह प्रदेश की ऊर्जा आपूर्ति व्यवस्था में मील का पत्थर साबित हो सकता है। अन्यथा किसी एक जिले की लापरवाही पूरे प्रयोग की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगा सकती है। इसलिए नीति निर्माताओं को गति के साथ सावधानी का संतुलन बनाए रखना होगा। सुविधा तभी सार्थक है, जब सुरक्षा प्रदेश के हर कोने में समान रूप से सुनिश्चित रहे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

पंप की लाइन से डोर की दस्तक